Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2021 GISRRJ | Volume 4 | Issue 5 | ISSN : 2582-0095

संस्कार एवं आश्रम व्यवस्था की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में समीक्षा

प्रभा चतुर्वेदी

शोध छात्रा, संस्कृत विभाग, राजकीय महाविद्यालय, कोटा, राजस्थान।

Article Info
Volume 4 Issue 5
Page Number : 92-101

Publication Issue :
September-October-2021

Article History
Accepted : 01 Sep 2021
Published : 15 Sep 2021

सारांश- संस्कारों के विवेचन से स्पष्ट होता है कि यद्यपि वर्तमान समय में सुरक्षात्मक दृष्टि से विभिन्न नियम-कानून बनाए गये हैं फिर भी बदलते परिवेश, पाश्चात्य दृष्टिकोण व संकुचित मानसिकता आदि के कारण संस्कारों का वास्तविक स्वरूप एवं उद्देश्य विकृत हो गया है। जिसके कारण आज समाज में पारस्परिक विद्वेष, नैतिक एवं चारित्रिक पतन जैसी विषम प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर हो रही हैं। यदि इन संस्कारों का समुचित रीति से नियमपूर्वक पालन किया जाए तो प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व का निर्माण तथा आध्यात्मिक प्रवृत्ति सम्भव हो सकती है।

मुख्य शब्द- संस्कार, व्यवस्था, सदस्य, कर्तव्य, अधिकार, वर्णव्यवस्था, समाज, स्मृति, साहित्य, धर्म।

स्मृति साहित्य व अन्य धर्मशास्त्रकारों ने मानव जीवन के लिए जिन संस्कारों का विधान किया है वे मनुष्य के चरित्र निर्माण एवं व्यक्तित्व के विकास में सहायक होने के साथ ही उसमें उच्च नैतिक गुणों के स्थापक हैं। तत्कालीन समाज में इनका अनुष्ठान निर्धारित समय पर पूर्ण आस्था एवं विश्वास के साथ विधिवत् किया जाता था, लेकिन कालक्रम के प्रभाव से नई सामाजिक, धार्मिक संस्थाओं और विचारधाराओं का उदय हुआ, जिससे तत्कालीन मान्यताओं व संस्थाओं का स्वरूप बदलता गया। इसके साथ ही भाषागत कठिनता, वेद मन्त्रों की अग्राह्यता, धार्मिक विधि-विधानों की अस्पष्टता तथा उनमें मात्र पुरोहित जनों की बोधगम्यता, जनसाधारण की उनके प्रति उदासीनता एवं अरुचि, विभिन्न जातियों व धर्मों के विकास और पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव आदि के कारण शनैः शनैः संस्कारों का ह्रास होता रहा।[1] आज समाज में संस्कारों का महत्त्व नाममात्र का रह गया है तथापि कुछ संस्कार आज भी समाज में अपना स्थान बनाए हुए हैं, यद्यपि उनके स्वरूप, अनुष्ठान पद्धति तथा संख्यादि में अन्तर आ गया है।

स्मृतिसाहित्य में जिन संस्कारों की गणना की गयी है उनमें सबसे पहला संस्कार 'निषेककर्म' अर्थात् गर्भाधान है जिसे उस समय की संस्कृति नवीन आत्मा के आह्वान का एक पवित्र यज्ञ मानती थी, जो उचित तिथि व दिन के नियमानुसार किया जाता था। आज इस संस्कार में उतनी धार्मिकता या पवित्रता तो नहीं रही है, किन्तु अब सन्तानोत्पत्ति आकस्मिक या अविवेचना की परिणति न होकर सोच-विचारकर उचित समय पर की जाती है। यह समय की विडम्बना है कि कहीं-कहीं अब यह संस्कार त्यागा भी जा चुका है।[2] वर्तमान समय में पुंसवन एवं सीमन्तोन्नयन संस्कार समाप्त हो गये हैं।' लेकिन कुछ

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

लोगों की 'पुंस' उत्पत्ति विषयक मानसिकता अभी भी नहीं बदली है। वे आज भी पुत्र उत्पत्ति को अधिक महत्त्व देते हैं। इसके लिये लोग गुप्त रूप से अल्ट्रासाउण्ड तथा सोनोग्राफी के माध्यम से भ्रूण के लिंग को जानने का प्रयास करते हैं कि वह नर है या मादा। अब सरकार ने "गर्भ का चिकित्सीय समापन अधिनियम 1971 (1971 का 34)" के तहत लिङ्ग जाँच व भ्रूण हत्या पर रोक लगा दी है[3]और ऐसा करने वालों के लिए सजा व जुर्माने का प्रावधान किया है।[4] भारतीय दण्ड विधि संशोधन विधेयक, 2006 के द्वारा गर्भ-पूर्व लिंग निर्धारण परीक्षण (Pre-natal sex determination test) को घोर अपराध माना गया है, ऐसे व्यक्ति के लिए उम्र कैद तथा एक लाख रूपये तक के जुर्माने से दण्डित . किये जाने का प्रावधान किया गया है। निश्चय ही ऐसे प्रावधान से लिङ्ग जाँच व भ्रूण हत्या में कमी आयी है।

अब सीमन्तोन्नयन संस्कार तो नहीं किया जाता, किन्तु इसकी मनोवैज्ञानिक महत्ता से इन्कार नहीं किया जा सकता। आज भी चिकित्सक तथा अन्य अनुभवी वृद्धजन गर्भिणी स्त्री को प्रसन्न रहने की सलाह देते हैं और परिवारजन उसे प्रसन्न रखने का हर सम्भव प्रयास करते हैं। आज सभी देशों में गर्भस्थ शिशु व उसकी माता के संरक्षण व निरोगता के लिए अनेक क्रियायें 'Pre-natal care' के नाम से प्रारम्भ हो जाती हैं।[5] जिस प्रकार स्वास्थ्य की दृष्टि से इस संस्कार को महत्त्व दिया जाता था उसी प्रकार जन्म से पूर्व इन्जेक्शन, दवाईयाँ अथवा औषधि को आवश्यक माना गया है। वस्तुत: दोनों का उद्देश्य समान ही है-शिशु व माता की सुरक्षा। चाहे वह संस्कार के माध्यम से की जाए या औषधि आदि के रूप में। फिर भी यह संस्कार जो मानसिक शांति प्रदान करता था, वह आज की दवाईयाँ नहीं। कुछ संस्कारों में धार्मिक विधियों का अभाव है, यथा-जातकर्म, निष्क्रमण, अन्नप्राशन आदि। जातकर्म संस्कार में जिन शहद चटाने इत्यादि क्रियाओं का मन्त्रोच्चा- रणपूर्वक उल्लेख मिलता है, वे सब नवजात शिशु के साथ सुविधाजनक नहीं रही होगी, तभी तो इस प्रकार की बातें केवल ग्रन्थों में मिलती हैं, व्यवहारिक जीवन में नहीं। आधुनिक समय में अधिकांशतया घर के स्थान पर अस्पतालों में प्रसूति होने के कारण भी यह संस्कार लुप्त हो गया है। काणे के अनुसार बंगाल में तो जातकर्म तथा अन्न- प्राशन एक ही दिन सम्पादित किये जाते हैं।[6]निष्क्रमण संस्कार का प्रारम्भिक स्वरूप तो नहीं रहा है, किन्तु कुछ लोग बालक को घर से बाहर ले जाते समय उत्सव मनाते हैं[7], तो कुछ नदी-पूजन या देव-पूजन करते हैं।[8]अब नामकरण के साथ भी इस संस्कार को सम्पन्न कर दिया जाता है, ऐसा उल्लेख मिलता है।[9] अन्नप्राशन का सीमित रूप दिखाई देता है जो बिना किसी मन्त्रोच्चारण तथा पुरोहित को बुलाये सम्पन्न कर दिया जाता है। आज चिकित्सक भी महर्षि शंख की भांति अन्नप्राशन विषयक छठे माह को ही उचित बताते हैं। कुछ संस्कारों का परम्परापूर्ति हेतु मात्र अनुष्ठान कर दिया जाता है, यथा नामकरण एवं मुण्डन संस्कार । आधुनिक समय में बालक का नामकरण जन्म के बारहवें दिन बिना किसी वैदिक मंत्रोच्चारण के कर दिया जाता है। कहीं-कहीं अब भी यह संस्कार पूर्ण वैदिक रीति से किया जाता है।[10] किन्तु पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव में सार्थक नामों की परम्परा लुप्त होती जा रही है। लोग अपनी इच्छानुसार नाम रखते हैं, चाहे उसका कोई अर्थ हो या न हो। इसी प्रकार बालक के जन्म के केश भी एक बार कटवा दिये जाते हैं, क्योंकि गर्भ वाले केश अपवित्र माने जाते हैं। केश कर्तन का सम्पूर्ण कार्य नाई ही सम्पन्न करता है। 'चूडाकर्म' यह शब्द प्राय: इस संस्कार के लिए रूढ़ हो गया है और अब इसे 'मुण्डन' कहा जाता है। इस संस्कार में शिखा रखने की परम्परा भी अब न के बराबर है, क्योंकि अधिकांशत: हिन्दू लोग शिखा रखने में लज्जा का अनुभव करते हैं, किन्तु परम्परावादी संस्कारवान् परिवारों में आज भी लोग शिखा रखते हैं। देवल ऋषि ने शिखा एवं यज्ञोपवीत के महत्त्व को

प्रदर्शित करते हुए कहा है कि बिना शिखा एवं यज्ञोपवीत के कोई भी धार्मिक–कृत्य नहीं करना चाहिए। इन दोनों के बिना किया हुआ धार्मिक–कृत्य न किया हुआ समझना चाहिए। अतएव धार्मिक– कृत्य सम्पन्न कराने वाले ब्राह्मणों के लिए यह आज भी प्रासङ्गिक है। उपनयन के दिन भी इस संस्कार को करने का विधान मिलता है।'

आज सामान्य रूप से उपनयन एवं समावर्तन संस्कार का प्रचलन दिखाई नहीं देता, क्योंकि शिक्षा, शिक्षा के माध्यमादि सभी परिवर्तित हो चुके हैं, किन्तु आज जहाँ परम्परागत ढंग से गुरुकुल प्रणाली के माध्यम से शिक्षा दी जाती है वहाँ उपनयन एवं समावर्तन शास्त्रोक्त विधि से किये जाते हैं। कुछ आधुनिक गुरुकुलों के नाम इस प्रकार हैं–श्रीमद्दयानन्द वेद विद्यालय गौतमनगर, नई दिल्ली–49, गुरुकुल यमुनातट मझावली, जिला–फरीदाबाद (हरियाणा), श्रीमद्दयानन्द आर्ष ज्योतिर्मठ, गुरुकुल दूनवाटिका–2, पौंधा, जिला–देहरादून (उत्तराखण्ड), गुरुकुल नरसिंहनाथ पाईकमाल, जिला–बरगड़ (उड़ीसा), आर्ष कन्या गुरुकुल, देवनगर (घूचापाली), जिला–बरगड़ (उड़ीसा), गुरुकुल योगाश्रम, पतरकोनी, पेण्ड्रा रोड़, जिला–बिलासपुर (छत्तीसगढ़), श्रीकृष्ण आर्ष गुरुकुल, देवालय गोमत, वाया खैर, जिला–अलीगढ़ (उत्तर प्रदेश), श्रीमद्दयानन्द उपदेशक महाविद्यालय शादीपुर, यमुना नगर हरियाणा इत्यादि।

वर्तमान समय में उपनयन संस्कार के हमें दो रूप दिखायी देते हैं–प्रथम शिक्षा सम्बन्धी उपनयन संस्कार। द्वितीय विवाह सम्बन्धी उपनयन संस्कार। प्रथमत: आज भी गुरुकुलों में उपनयन संस्कार की सम्पूर्ण क्रिया यत्किञ्चित् परिवर्तित विधि–विधान के साथ सम्पन्न की जाती है, किन्तु वर्णानुसार जहाँ बालक को विभिन्न प्रकार के मेखला, वस्त्र, दण्ड एवं यज्ञोपवीत धारण करने होते थे वहीं आज इस अवसर पर प्रत्येक छात्र को समान रूप से साधारण स्वच्छ वस्त्र, दण्ड, मेखला एवं यज्ञोपवीत धारण करवाये जाते हैं और भिक्षाचरण की क्रिया भी सम्पन्न करवायी जाती है। यहाँ दण्ड धारण एवं भिक्षाचरण उसके दैनिक क्रिया के अभिन्न अंग न होकर मात्र नियम के पालन हेतु करवाये जाते हैं, क्योंकि परिस्थितिवश अब इनकी अनिवार्यता समाप्त हो चुकी है। आज अधिकांशत: गुरुकुलों में भोजनादि समस्त वस्तुओं की व्यवस्था उपलब्ध है। प्रशासन एवं विभिन्न शिक्षण संस्थाओं की ओर से निर्धन तथा मेधावी छात्र–छात्राओं को शिक्षा पूर्ण करने हेतु छात्रवत्तियाँ दी जाती हैं। आज भी ब्राह्मण जातियों में इस संस्कार का निर्वाह पूर्ण श्रद्धा के साथ किया जा रहा है।[11] लेकिन आधुनिक शिक्षण संस्थानों–विद्यालयों, महाविद्यालयों विश्वविद्यालयों तथा इन्स्टीच्यूट आदि में इस प्रकार के उपनयन का सर्वथा अभाव है, जिसके कारण आज बालक विद्यास्नातक तो हो जाता है लेकिन विद्याव्रतस्नातक नहीं। यही कारण है कि आज शिक्षा के उच्च शिखर पर पहुँच जाने पर भी छात्रों में गुरु सेवा, तपश्चर्या, विनम्रता, धैर्यता आदि का अभाव मिलता है।

द्वितीयत: उपनयन शब्द का प्रयोग शिक्षा के अर्थ में न होकर एक विशिष्ट संस्कार के अर्थ में किया जाता है जो द्विजाति कहे जाने वाले व्यक्ति के विवाह से पूर्व किसी भी समय किया जा सकता है। इस अर्थ में इसे 'जनेऊ' कहा जाता है, जिसका अभिप्राय उस संस्कार से है जिसमें बालक को यज्ञोपवीत पहनाया जाता है।[12]अतएव वर्तमान में उपनयन का प्राचीन स्वरूप गुरुकुलों को छोड़कर प्राय: समाप्त हो चुका है। अब उपनयन का अर्थ केवल 'जनेऊ' धारण करना रह गया है।

यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि जहाँ स्मृतियों में स्त्रियों के उपनयन संस्कार का निषेध किया गया है वहीं आज अनेक गुरुकुल स्त्री–शिक्षा के लिए प्रतिष्ठित हैं। जहाँ उपनयन संस्कार से लेकर सम्पूर्ण अध्ययन–अध्यापन का कार्य स्त्रियाँ कर रही हैं। उपनयन संस्कार की सम्पूर्ण क्रिया मन्त्रोच्चारणपूर्वक वैदिक रीति से ही सम्पन्न की जाती है। कुछ वर्तमान कन्या गुरुकुलों के

नाम इस प्रकार हैं–श्रीमद्दयानन्द कन्या गुरुकुल महाविद्यालय, चोटीपुरा (मुरादाबाद), कन्या गुरुकुल सासनी (हाथरस), गुरुकुल आर्ष कन्या विद्यापीठ नजीबाबाद, जिला बिजनौर, कन्या महाविद्यालय जालन्धर, कन्या गुरुकुल महाविद्यालय देहरादून, आर्य कन्या महाविद्यालय बड़ौदा, आर्य कन्या गुरुकुल लोवाकलां (रोहतक), आर्ष कन्या गुरुकुल नरेला (दिल्ली), आर्य कन्या गुरुकुल, न्यू राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली, कन्या गुरुकुल बचगाँवा गामड़ी (कुरुक्षेत्र)।

वर्तमान समय में वेदारम्भ संस्कार को एक पृथक् संस्कार न मानकर उपनयन संस्कार का ही अंग माना गया है, क्योंकि अब उपनयन के अवसर पर ही मुख्य वेदी या अलग से वेदी बनाकर उस पर वेदारम्भ सम्बन्धी आहुतियाँ देने की परम्परा विकसित हो गई है।[13] इसके अतिरिक्त आजकल जो पद्धति अपनायी जा रही है उसमें इस संस्कार से पूर्व नौ ग्रहों[14] की पूजा को आवश्यक माना गया है। इसके साथ ही इस संस्कार में ब्रह्मा का वरण करके उसके तिलक कर, मौली बाँधने का विधान किया गया है। गुरु वेद पढ़ाने से पूर्व वस्त्र पर चावलों से अष्टदल बनाकर उस पर सरस्वती तथा वेदों की पूजा भी करवाता है। राजस्थान की प्रथा के अनुसार संस्कार के अन्त में गुरु खड़ा होकर ब्रह्मचारी के दाहिने हाथ से स्पर्श कराते हुए पुष्प–फल युक्त घृत भरे हुए स्रुवे (प्रोक्षणी) से पूर्णाहुति देता है फिर बैठकर स्रुवा से भस्म उठाकर दाहिने हाथ की अनामिका से लेकर गुरु अपने माथे, गले और दाहिने कन्धे एवं छाती पर लगाता है। फिर इसी क्रम में वह शिष्य के शरीर पर भस्म धारण करवाता है।[15]

समावर्तन संस्कार का निर्वहन अधिकांश गुरुकुलों तथा संस्कृत संस्थानों में किया जा रहा है। आधुनिक शिक्षण संस्थानों में भी इस संस्कार की छाप दिखाई देती है। विद्यार्थियों के द्वारा स्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त जो विश्वविद्यालयों या महाविद्यालयों से उपाधि–पत्र दिया जाता है वही आधुनिक संस्थानों का बालक के लिए समावर्तन है। इससे पूर्व आधुनिक विश्वविद्यालयों में 'दीक्षान्त समारोह' का आयोजन किया जाता था। स्नातकों को उपाधि प्राप्ति हेतु विशिष्ट वेशभूषा दी जाती थी। दीक्षान्त समारोह के दिन विश्वविद्यालय के कुलपति स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण करने वाले छात्रों को उपाधि–पत्र देते थे और तैत्तिरीयोपनिषद् का अनुशासन प्रस्तुत करके विद्यार्थियों को सदाचरण के लिए प्रेरित करते थे[16], किन्तु अब यह स्वरूप भी बदल कर मात्र उपाधि–पत्र तक ही सीमित रह गया है। स्नातक के लिए किसी दीक्षान्त समारोह को आयोजित नहीं किया जाता। आज गुरुकुलों तथा अन्य संस्थाओं से समावर्तन के पश्चात् भी छात्र उच्च शिक्षा को प्राप्त कर तथा आजीविका ग्रहण कर विवाह करता है। वस्तुत: बालक की शिक्षा अब स्नातक तक सीमित नहीं रह गई है। इसके अनन्तर भी वह अनेक उपाधियों को प्राप्त कर जीवन को सुखमय बनाने का यथासम्भव प्रयास करता है।

विवाह आज भी धार्मिक संस्कार के रूप में प्रचलित है। इस संस्कार का विधिरूप तो लगभग यथावत् है, किन्तु अन्य अनेक विस्तार तथा सूक्ष्मताएँ लुप्त हो गई हैं। तत्कालीन समय में जहाँ सवर्ण, गोत्र, प्रवर, कुल, सपिण्ड तथा कन्या एवं वर के गुणादि का विचार कर विवाह संबंध तय किया जाता था वहीं आज कन्या एवं वर के गुण–अवगुण तथा कुलादि को तो महत्त्व दिया जाता है लेकिन अन्य को नहीं। आज सवर्ण अथवा सजातीय विवाह की अनिवार्यता क्षीण होने से गोत्र एवं प्रवर संबंधी मान्यतायें व्यर्थ होती जा रही हैं। बहुत से ऐसे लोग भी हैं, जिन्हें यह ज्ञात ही नहीं है कि प्रवर एवं गोत्र होता क्या है? यदि सपिण्डता की बात करे तो लोगों को माता की पाँच पीढ़ी और पिता की सात पीढ़ी का नाम स्मरण ही नहीं होगा। जबकि सभी धर्मशास्त्रों में सगोत्र एवं सप्रवर विवाह का निषेध किया गया है।

आरम्भ में हिन्दू कानून के द्वारा भी इस प्रकार के विवाह अवैध माने गये थे, किन्तु बाद में परिस्थितियों के अनुरूप सगोत्र, सप्रवर तथा सपिण्डता सम्बन्धित नियमों का प्रावधान कर दिया गया। आज "हिन्दू विवाह अयोग्यतायें निवारण अधिनियम 1946"[17]तथा "हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 की धारा 292 के अनुसार सप्रवर तथा सगोत्र विवाह वैध है। इसी प्रकार सपिण्डता कहाँ तक मानी जाए? इसके लिए रीति-रिवाज एवं कानून को आधार माना गया है। "हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 की धारा 3 'एफ' तथा 'जी' के अनुसार माता की ओर से तीन पीढ़ियों तक तथा पिता की ओर से पाँच पीढ़ियों तक सपिण्ड माने जाएंगे। लेकिन अधिकांशत: हिन्दू परिवारों में आज भी सवर्ण कन्या से विवाह को ही मान्यता दी जाती है और अपने गोत्र में एवं सपिण्ड से विवाह न करने की परम्परा विद्यमान है। सपिण्ड के साथ, यथा-फुफेरी, मौसेरी, ममेरी बहन से विवाह नहीं किया जाता। किन्तु दक्षिण भारत के कुछ प्रदेशों, यथा-कर्नाटक एवं मैसूर के लोग, जिनमें ब्राह्मण भी सम्मिलित हैं, जो अपनी बहन की लड़की से विवाह कर सकते हैं। तमिल एवं तेलुगु जिलों के ब्राह्मणों एवं शूद्रों में अपनी पत्नी की बहन की लड़की से विवाह वैध माना गया है।[18]यहाँ तक कि दक्षिण भारत में मामा की लड़की से भी विवाह प्रचलित है। आधुनिक युग में इस प्रथा को उचित नहीं माना जाता। "हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 5, उपधारा पअ" के अनुसार ये विवाह नहीं हो सकते, यदि इस प्रकार की कोई प्रथा उनके समाज में नहीं है।[19]

शंखस्मृति विहित आठ प्रकार के विवाहों में से अधिकांश विवाह-दैव, आर्ष, आसुर, राक्षस और पैशाच लुप्त हो चुके हैं, जिनका विधान तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप वर्णानुसार किया गया था। आज न तो वर्णव्यवस्था रही है और न ही उक्त विवाह । वर्तमान में विवाह का जो आदर्श स्वरूप (कन्यादान तथा आशीर्वादात्मक) दिखाई देता है। हाँ, उसे हम ब्राह्म या धर्म विवाह तथा प्राजापत्य की कोटि में रख सकते हैं, जो किसी जाति विशेष के लिए न होकर सम्पूर्ण हिन्दू समाज के लिए है। सामान्यत: आज इसी को जन सामान्य में श्रेष्ठ माना जाता है।

समाज में आसुर विवाह की प्रथा यद्यपि वैदिककाल[20]से ही प्रचलित रही है, किन्तु इसे प्रशंसनीय नहीं माना जाता था। सभी धर्मशास्त्रकारों ने आरम्भ से ही इसकी भर्त्सना की है। फिर भी आधुनिक युग में यह प्रथा कतिपय निम्न जातियों में देखने को मिलती है। राजस्थान के कन्जर, झाँसी, मीना इत्यादि जातियों में इस प्रथा का प्रचलन है। कहीं-कहीं उच्च जातियों में भी बेमेल विवाहों का आधार अप्रत्यक्ष रूप से कन्यामूल्य है।[21]

आज लड़के-लड़कियों में शिक्षा के प्रसार तथा सह-शिक्षा के कारण 'प्रेम विवाह' भी प्रचलन में आ रहा है, जिसे आजकल प्राचीनकालीन गान्धर्व विवाह का ही रूप माना जाता है, किन्तु इन दोनों का गहनतापूर्वक अध्ययन करें तो आज दोनों को समान मानना युक्तिसंगत न होगा। गान्धर्व विवाह में मात्र कामनावश संयुक्त होने को ही गान्धर्व नाम दिया गया था। जबकि प्रेम-विवाह के कई रूप दष्टिगोचर होते हैं, यथा- परिवार वालों की बिना अनुमति से विवाह करना, परिवार वालों की सहमति से विवाह करना, कानूनी विवाह (Court Marriage), मंदिरों में जाकर कुछ सम्बन्धियों की उपस्थिति में विवाह करना। इनमें विधि-विधान को भी महत्त्व दिया जाता है, लेकिन विवाह से पूर्व संयुक्त होने को आज विवाह की श्रेणी में नहीं रखा जाता। यद्यपि इस प्रकार के कतिपय मुकद्दमें न्यायालय में आ जाते हैं पर इसे विवाह मानना आज के युग में सर्वथा अनुचित होगा। उदाहरण के लिए महाकवि कालिदास के सर्वोत्कृष्ट नाटक "अभिज्ञानशाकुन्तलम्" को देखें तो वहाँ दुष्यन्त व शकुन्तला के कामवश संयुक्त होने को 'गान्धर्व' नाम दिया गया, जिसे प्रणय का प्रतीक मानकर विवाह के रूप में मान्य

ठहराया। यहाँ यह दृष्टव्य है कि उनका विवाह बिना किसी की उपस्थिति में तथा बिना वैदिक रीति से हुआ था। आज यदि ऐसा किया जाता है तो उसे विवाह नहीं माना जाता और कामातुरता प्रधान होने के कारण समाज में इसे हेय दृष्टि से देखा जाता है। लेकिन कुछ परिवारों में प्रेम के पश्चात् यदि दोनों के परिवार जनों से स्वीकृति मिल जाती है तो उसमें कुछ स्थायित्व आ जाता है और उसे समाज में स्वीकार कर लिया जाता है। युवा पीढ़ी आज इस विवाह को श्रेष्ठ मानती है। प्रशासन भी ऐसे विवाहों को प्रोत्साहित कर रहा है, किन्तु बिना परिवार जनों की सहमति के विवाह करना आज भी समाज में निन्दनीय माना जाता है. भले ही सरकार ऐसे विवाहों को प्रोत्साहित क्यों न करे? क्योंकि इस प्रकार के विवाहों में आज ग्राम से बाहर निकालना, जातिच्युत करना, दम्पती से किसी प्रकार का सम्बन्ध न रखना, सहयोग न करना, यहाँ तक कि हत्या इत्यादि के मामले भी देखे जाते हैं। सामाजिक दृष्टि से परिवारों में कलह, विवाह-विच्छेद आदि का कारण भी अधिकांशत: प्रेम-विवाह है, क्योंकि ऐसे विवाहों में लड़का-लड़की दोनों अपने को समान समझते हैं, अत: वैचारिक मतभेद होना स्वाभाविक है। आज प्रेम का सच्चा स्वरूप नहीं रह गया है। इसलिये अधिकतर विवाह सफल नहीं होते। यद्यपि तत्कालीन समाज में गान्धर्व-विवाह मान्य था। बाद में 1881 ई. में इलाहाबाद कोर्ट ने गान्धर्व-विवाह को अमान्य घोषित कर दिया था, किन्तु हिन्दू कानून के अनेक आधुनिक वक्ताओं ने इसे मान्य ठहराया। बनर्जी ने अपनी पुस्तक "हिन्दू लॉ" तथा मेन ने अपनी पुस्तक "मेन ट्रिटीज़ एन हिन्दू लॉ एण्ड यूजेज" में इस विवाह को मान्यता दी। आज तो यह प्रेम-विवाह के रूप में मान्य है ही। 1872 ई. में 'प्रेम-विवाह' को हिन्दू रीति-रिवाजों के विरुद्ध कानूनी रूप से सम्पन्न करने की सुविधा "विशेष विवाह अधिनियम" के द्वारा प्रदान की गई है।[22]प्रेम-विवाह के अतिरिक्त पूँजीपतियों में स्वयंवर प्रथा भी दिखाई देती है, यथा-राहुल महाजन और डिम्पी का स्वयंवर।

तत्कालीन समय में स्त्री व उसकी सन्तान को समाज में सम्मानपूर्वक जीने का अधिकार मिल सके, इसलिये राक्षस और पैशाच कृत्य को विवाह के रूप में मान्यता मिली होगी, किन्तु आज राक्षस तो प्राय: लुप्त हो गया है। यदि आज विवाह धोखे से या जोर-जबरदस्ती से कर दिया गया हो तो उसे आधुनिक कानून के अनुसार अन्यथा सिद्ध किया जा सकता है, भले ही विवाह में सभी धार्मिक-कृत्य क्यों न सम्पादित कर दिये गये हों।[23] पैशाच-कृत्य, विवाह के रूप में नहीं अपितु दुष्कर्म या बलात्कार के रूप में बढ़ता जा रहा है। कन्याएँ प्रतिदिन इस शोषण का शिकार हो रही हैं। छोटी उम्र से लेकर बड़ी उम्र तक इस दुष्कर्म को अन्जाम दिया जा रहा है। यहाँ तक कि ऐसा दुष्कर्म करने के उपरान्त लड़कियों को मार दिया जाता है जिसे प्राचीनकालीन पैशाच की संज्ञा नहीं दी जा सकती। विवाह का अर्थ होता है-'विशिष्ट ढंग से कन्या को ले जाना। यह विवाह भी तभी सार्थक है जब धार्मिक विधि-विधान के साथ सम्पन्न किया जाए अन्यथा बलपूर्वक या दुष्कर्म कर कन्या को प्राप्त करने को विवाह का नाम नहीं दिया जा सकता, ऐसा करना मात्र दुष्कर्म है, मानवता का हनन है। तत्कालीन समय में भी इसे अत्यन्त घृणास्पद, जघन्य कर्म माना जाता था और आज भी। हाल ही में हुए दो वर्ष की बच्ची 'फलक' तथा 'दामिनि' केश ने भारतवर्ष को शर्मसार कर दिया है। ऐसे हजारों केश कन्या शोषण से सम्बन्धित हैं। यद्यपि ऐसे दुष्कर्म के लिए "भारतीय दण्ड संहिता (फौजदारी कानून) की धारा 376" के अनुसार बलात्कारी के लिए 7 वर्ष से 10 वर्ष या उम्र कैद का विधान किया गया है।[24] फिर भी इस दुष्कृत्य में वृद्धि होती जा रही है। ऐसे दुष्कर्म को रोकने के लिए और अधिक कठोर से कठोर

कानून बनाये जाने चाहिये। ऐसे मामलों में शीघ्रातिशीघ्र निर्णय लिया जाना चाहिये, तभी देश का उज्ज्वल भविष्य सम्भव है, अन्यथा देश अंधकाररूपी पतन के गर्त में चला जाएगा।

तत्कालीन समाज में पुरुष का विवाह वयस्क होने पर तथा स्त्री का विवाह बाल आयु में होता था। आधुनिक समय में बाल-विवाह की यह कुरीति समाप्त हो गई है। प्रारम्भ में भारत सरकार ने "बाल-विवाह नियंत्रक अधिनियम 1929 या शारदा विवाह अधिनियम" के द्वारा लड़के की विवाह आयु 18 वर्ष और लड़की की आयु 15 वर्ष निर्धारित कर बाल-विवाह को रोकने का प्रयास किया। इसी प्रकार "हिन्दू विवाह अधिनियम 1955" पारित किया गया, जिसमें वर की आयु 18 वर्ष तथा वधू की आयु 15 वर्ष निश्चित की गई। जिसका उल्लंघन करने पर धारा 18, उपधारा (अ) के अनुसार 15 दिन के साधारण कारावास या एक हजार रूपये जुर्माने का विधान किया गया।[25] लेकिन बाद में इस अधिनियम को संशोधित कर लड़की के विवाह की न्यूनतम आयु 18 वर्ष और लड़के की 21 वर्ष निर्धारित की गई।[26] वर्तमान में विवाह की यह आयु वैध मानी गई है जो शारीरिक व मानसिक दृष्टि से उचित है। ग्रामीण क्षेत्रों में कहीं-कहीं लड़कियों का अल्पायु में विवाह देखने को मिलता है, जिसका कारण वहाँ की प्रथाएँ, रीति-रिवाज, अशिक्षा, रूढ़िवादिता इत्यादि हैं। शहरी क्षेत्रों में अब लड़कियों के पढ़ने-लिखने के पश्चात् ही विवाह किया जाता है। अतएव लड़कियों में शिक्षा का प्रसार बढ़ जाने से भी उनकी विवाह की आयु स्वत: बढ़ रही है।

शंखस्मृति में कहीं भी ऐसा संकेत नहीं मिलता है जिससे यह लक्षित होता हो कि कन्याओं का विवाह करने में कन्या पक्ष वालों को बहुत अधिक आर्थिक कठिनाई का सामना करना पड़ता था। यदि धन दिया भी जाता रहा होगा तो बहुत कम या धर्म के पालन हेतु या इस प्रकार की प्रथा धनी या उच्च वर्ग में होगी साधारण जन में नहीं, क्योंकि शंख ने कहीं भी कन्या को अलंकृत कर दान करने की बात नहीं कही है। वस्तुत: विवाह बिना किसी दहेज के अत्यन्त साधारण ढंग से होता था, किन्तु आज विवाह में 'दहेज' एक विकट समस्या बन गई है। जिसके कारण आज पारिवारिक संघर्ष, निम्न जीवनस्तर, नवजात कन्याओं की हत्या, आत्महत्या, लड़कियों का अविवाहिता रह जाना, बेमेल विवाह, विवाह-विच्छेद, बाल-विवाह, अनैतिकता व अपराध का बढ़ना, मानसिक व्याधियाँ, स्त्री शिक्षा में बाधा इत्यादि समस्यायें दिन- प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। इसलिये दहेज के विरुद्ध कानून बना दिये गये हैं। दहेज की रकम भी तय की गई है। उदाहरण के लिए "राजस्थान दहेज प्रतिबन्ध विधेयक 1958" के अनुसार यह 501 रूपये से अधिक नहीं हो सकती और भारतीय लोकसभा में प्रस्तावित "दहेज निषेध विधेयक" के अनुसार दो हजार से अधिक नहीं होनी चाहिए।[27] लेकिन आज दहेज मांगने वाले रूपये हजारों में नहीं वरन् लाखों में दहेज की मांग करते हैं। इसलिये अब "दहेज निषेध अधिनियम 1961 (1961 का 28वां)" की धारा 3 और 4 के अनुसार दहेज देना या लेना और दहेज मांगना कानूनी अपराध घोषित कर दिया गया है तथा ऐसे लोगों को दण्डरूप में 6 मास का कारावास या 5,000 रूपये जुर्माना अथवा दोनों हो सकते हैं।[28]

समाज में बहुपत्नी विवाह की प्रथा थी, लेकिन एक पत्नी विवाह को ही आदर्श रूप में माना जाता था। आज बहुपत्नी विवाह न तो सैद्धान्तिक रूप से मान्य है, न ही व्यवहारिक रूप में। अब एक से अधिक स्त्रियों से विवाह करना गैरकानूनी है। भारत सरकार के "हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 (1955 का 25वां)" के अनुसार कोई भी व्यक्ति एक पत्नी या पति के रहते हुए दूसरा विवाह नहीं कर सकता। यदि पति-पत्नी का कानूनन विवाह-विच्छेद (तलाक) नहीं हुआ है तो भी दूसरा विवाह

करना अवैध है। हाँ, यदि विवाह के समय पति या पत्नी जीवित न हो या कानूनन विवाह-विच्छेद हुआ हो तो दोनों विवाह कर सकते हैं। इस प्रकार वर्तमान में विवाह सम्बन्धी स्वच्छन्द प्रवृत्तियों के स्थान पर मानवोचित व्यवहार को मर्यादित कर दिया गया है।

बहुपत्नीत्व के साथ-साथ समाज में अनुलोम विवाह का प्रचलन था अर्थात् उच्च वर्ण का पुरुष अपने से निम्न वर्ण वाली स्त्री से विवाह कर सकता था[29], किन्तु सवर्णा अर्थात् अपनी ही जाति वाली स्त्री से विवाह को उत्कृष्ट माना जाता था। आधुनिक समय में इसे अन्तर्विवाह (Inter Caste) कहा जाता है। आज अधिकांशत: हिन्दू परिवारों में इस नियम का दृढ़ता से निर्वाह किया जा रहा है। विशेषकर ग्रामों में इस नियम के विरुद्ध जाकर विवाह करना सरल नहीं है। ऐसा करने पर लोग उसे जाति से बहिष्कृत कर देते हैं, किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखते तथा कोई सहयोग नहीं करते, किन्तु अब शिक्षा के प्रचार-प्रसार, सह शिक्षा, विचारों व सामाजिक सुधारकों का प्रभाव, वयस्क विवाह, आवागमन एवं सन्देशवाहन के साधनों में वृद्धि, सह-कार्य, औद्योगीकरण एवं नगरीकरण, विज्ञान का प्रभाव, कानूनी बाधाओं की समाप्ति आदि के कारण अन्तर्जातीय विवाह का प्रचलन बढ़ रहा है, जिनमें सर्वाधिक प्रेम-विवाह है। डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार ने अन्तर्विवाह तथा अन्तर्जातीय विवाह के भेद को स्पष्ट करते हुए कहा है कि "अपनी जाति में ही विवाह करना अन्तर्विवाह (Inter Caste) है, यथा-सारस्वत ब्राह्मण का सारस्वतों में, गौड़ का गौड़ों में और कान्यकुब्ज का कान्यकुब्जों में विवाह करना।" यदि अपनी जाति से बाहर विवाह किया जाए तो वह अन्तर्जातीय विवाह है, यथा-ब्राह्मण यदि सारस्वत है और वह गौड़ या कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार में विवाह करता है तो वह अन्तर्जातीय विवाह (Inter Sub-Caste Marriage) है।[30] वस्तुत: अन्तर्जातीय विवाह जाति-विवाह ही है फिर भी अन्तर्जातीय विवाह नहीं किये जाते हैं। प्रारम्भ में कानून ने भी इसे अवैध माना था, किन्तु बाद में इसे वैध माना गया। वर्तमान में "हिन्दू विवाह मान्यता अधिनियम 1949" के अनुसार विवाह के लिए एक ही जाति या धर्म का होना आवश्यक नहीं है। किसी भी धर्म, जाति या उपजाति के लोग आपस में विवाह कर सकते हैं।[31]इसी प्रकार "विशेष विवाह अधिनियम 1954 (1954 का 43वां)" के अधीन विभिन्न धर्मावलम्बियों को बिना अपना धर्म बदले आपस में विवाह करना मान्य है।[32]

इस प्रकार संस्कारों के विवेचन से स्पष्ट होता है कि यद्यपि वर्तमान समय में सुरक्षात्मक दृष्टि से विभिन्न नियम-कानून बनाए गये हैं फिर भी बदलते परिवेश, पाश्चात्य दृष्टिकोण व संकुचित मानसिकता आदि के कारण संस्कारों का वास्तविक स्वरूप एवं उद्देश्य विकृत हो गया है। जिसके कारण आज समाज में पारस्परिक विद्वेष, नैतिक एवं चारित्रिक पतन जैसी विषम प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर हो रही हैं। यदि इन संस्कारों का समुचित रीति से नियमपूर्वक पालन किया जाए तो प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व का निर्माण तथा आध्यात्मिक प्रवृत्ति सम्भव हो सकती है।

सन्दर्भग्रन्था:

1. पाण्डेय, डॉ. राजबली, हिन्दू-संस्कार, पृ.351-352
2. काणे, पी.वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग, पृ.180
3. (क) आशा रानी व्होरा, औरत कल, आज और कल, पृ.136

(ख) प्रो. सरिता वाशिष्ठ, महिला और कानून, पृ.132–133

4. परांजपे, डॉ. ना.वि., भारतीय दण्ड संहिता, संस्करण 2008, पृ.545
5. शर्मा, हरद्वारी लाल, संस्कृति–विज्ञान की रूप–रेखा, पृ.199
6. काणे, पी.वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग, पृ.180
7. प्रीति प्रभा गोयल, भारतीय संस्कृति, पृ.74
8. द्विवेदी, श्री व्रजवल्लभ, भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्व, पृ.4
9. डॉ. किरण टण्डन, भारतीय संस्कृति, पृ.60
10. काणे, पी.वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम भागए पृ.196 तथा 180
11. पुरोहित, डॉ. सोहन कृष्ण, उपनयन संस्कार मीमांसा, पृ.136
12. पाण्डेय, डॉ. राजबली, हिन्दू संस्कार, पृ.149–150
13. पुरोहित, डॉ. सोहन कृष्ण, उपनयन संस्कार मीमांसा, पृ.110
14. सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु एवं केतु । दीक्षित, स्व. श्री शंकर बालकृष्ण, अनु.–झारखण्डी, शिवनाथ, भारतीय ज्योतिष, पृ.733–734
15. शास्त्री, धरणीधर : सुगम उपनयन पद्धति, पृ.45–54
16. डॉ., किरण टण्डन, भारतीय संस्कृति, पृ.134
17. तोमर, प्रो. राम बिहारी सिंह, भारतीय सामाजिक संस्थाएँ, पृ.35
18. काणे, पी.वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग, पृ.281
19. तोमर, प्रो. राम बिहारी सिंह, भारतीय सामाजिक संस्थाएँ, पृ.41
20. (क) अश्रवं हि भूरिदावत्तरा वां विजामातुरुत वा द्या स्यालात् ।। ऋ., 1/109/2
(ख) दयति दोषा मर्यतो वधूयो: परिप्रीता पन्यसा वार्येण । वही, 10/27/12
21. तोमर, प्रो. राम बिहारी सिंह, भारतीय सामाजिक संस्थाएँ, पृ.60 र वही, पृ
22. तोमर, प्रो. राम बिहारी सिंह, भारतीय सामाजिक संस्थाएँ, पृ.46
23. काणे, पी.वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग, पृ.306
24. प्रो. सरिता वाशिष्ठ, महिला और कानून, पृ.136–137
25. (क) तोमर, प्रो. राम बिहारी सिंह, भारतीय सामाजिक संस्थाएँ, पृ.69–73
(ख) कापड़िया, के.एम., भारतवर्ष में विवाह एवं परिवार, पृ.160–162, 172
(ग) आशा रानी व्होरा, औरत कल, आज और कल, पृ.134
26. (क) आशा रानी व्होरा, औरत कल, आज और कल, पृ.135
(ख) प्रो. सरिता वाशिष्ठ, महिला और कानून, पृ.111, 133–134
27. तोमर, प्रो. राम बिहारी सिंह, भारतीय सामाजिक संस्थाएँ, पृ.51

28. (क) आशा रानी व्होरा, औरत कल, आज और वफल, पृ.136

(ख) प्रो. सरिता वाशिष्ठ, महिला और कानून, पृ.135–136

29. (क) कापड़िया, के.एम., भारतवर्ष में विवाह एवं परिवार, पृ.120

(ख) तोमर, प्रो. राम बिहारी सिंह, भारतीय सामाजिक संस्थाएँ, पृ.31–32

(ग) प्रो. सरिता वाशिष्ठ, महिला और कानून, पृ.133–134

30. जोशी, डॉ. प्रदीप कुमार, प्राचीन भारतीय शास्त्रों में वर्णित गार्हस्थ्य आश्रम, पृ.152–153

31. (क) कापड़िया, के.एम., भारतवर्ष में विवाह एवं परिवार, पृ.123–124

(ख) तोमर, प्रो. राम बिहारी सिंह, भारतीय सामाजिक संस्थाएँ, प.35–36

32. आशा रानी व्होरा, औरत कल, आज और कल, पृ.134–135